परिवार
इस्लाम की नज़र में

मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी

अनुवादक

कौसर लईक

विषय-सूची

بسم الله الرحمن الرحيم

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो रहम करनेवाला और बड़ा मेहरबान है'

मनुष्य समाज प्रिय है

पृथ्वी पर जब से मनुष्य का जन्म हुआ है, वह मिल-जुलकर रह रहा है और सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहा है। यह उसका स्वभाव है। वह अपने स्वभाव की दृष्टि से समाज में रहना पसन्द करता है और अपने सहजातीय लोगों के साथ मिल-जुलकर रहना चाहता है। इसके साथ ही वह उनके सहयोग का भी मुहताज है। उसके बिना वह अपने जीवन की आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं कर सकता, बल्कि उसके बिना उसका अस्तित्व एवं जीवन ही बड़े ख़तरे में पड़ जाएगा।

समाज का आरंभ परिवार से

मनुष्य के सामाजिक जीवन का आरंभ उसके निकटतम लोगों से होता है। यही उसका ख़ानदान एवं परिवार है। इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि परिवार वह सर्वप्रथम संस्था है जिससे मनुष्य ने सामाजिकता का पाठ पढ़ा। इस जगत् में आने के बाद मनुष्य को सबसे पहले जिस सहायता की आवश्यकता होती है, वह उसे परिवार ही से मिलती है। परिवार से बाहर उसकी आशा नहीं की जा सकती।

परिवार का महत्त्व और आवश्यकता

परिवार के लोगों के मध्य एक-दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करने, उनकी अपेक्षाओं पर पूरा उतरने एवं उनकी रक्षा व निगरानी की भावना पाई जाती है। परिवार के अन्दर हर व्यक्ति को इतमीनान होता है कि उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती रहेंगी और कोई भी गंभीर परिस्थिति पेश आएगी तो उसकी रक्षा की जाएगी। यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से और बिना किसी दबाव के होता है। परिवार की बहुत-सी समस्याएँ होती हैं, उन्हें परिवार के लोग मिल-जुलकर हल करते रहते हैं। उन्हें वे बोझ नहीं बल्कि अपनी ज़िम्मेदारी समझते हैं।

इस प्रकार परिवार एवं ख़ानदान का एक बड़ा लाभ यह है कि व्यक्ति के चारों ओर उसका भला चाहनेवाले और उससे हमदर्दी रखनेवाले लोग मौजूद होते हैं, जिनके बीच वह स्वयं को सुरक्षित एवं अमन में पाता है और ये लोग संकटों और परेशानियों में उसके काम आते हैं।

परिवार से मनुष्य का भावनात्मक संबंध भी होता है। वह उससे हार्दिक निकटस्थता और अपनाइयत महसूस करता है और दुख व आराम में उसे शामिल देखना चाहता है। कुटुम्ब व परिवार के लोग उसकी ख़ुशियों को चार चाँद लगाते हैं। उनका प्रेम और सहानुभूति उसकी पीड़ा एवं कष्ट को कम करती और उसे सुकून दिलाती है। परिवार उसकी आवश्यकता भी है और उसके लिए सुकून का साधन भी।

परिवार समाज की नींव है

परिवार छोटे भी हो सकते हैं और बड़े भी। कई परिवारों के मिलने से समाज वुजूद में आता है। परिवार की मज़बूती और कमज़ोरी से समाज की मज़बूती और कमज़ोरी वाबस्ता है। परिवार की बुनियादें मज़बूत हों तो समाज को मज़बूती और स्थायित्व प्राप्त होगा, यदि यह कमज़ोर हो तो पूरा समाज कमज़ोर

और शिथिलता का शिकार होगा। इमारत की अगर एक-एक ईंट पक्की हो तो उससे पूरी इमारत मज़बूत होती है। कच्ची और कमज़ोर ईंटों से मज़बूत इमारत की कल्पना नहीं की जा सकती। परिवार वह बुनियादी पत्थर है कि यह अपनी जगह से हटता है तो पूरे समाज की चूलें हिल जाती हैं और संबंधों में बिगाड़ और फ़साद पैदा होने लगते हैं। परिवार के टूटने से वह दायरा या सर्किल टूट जाता है जिससे मनुष्य का हार्दिक संबंध होता है। वे लोग जिन्हें मानव अपना समझता है, जो उससे अत्यंत निकट होते हैं, वे भी दूर होते चले जाते हैं और एक-दूसरे के साथ सहायता एवं सहयोग के लिए तैयार नहीं होते। वे तमाम संबंध जो परिवार की वजह से अस्तित्व में आते हैं और परिवार के बाक़ी रहने तक बाक़ी रहते हैं, उसके टूटते ही ख़त्म हो जाते हैं और मनुष्य पारिवारिक शांति से वंचित हो जाता है। परिवार का टूटना कोई साधारण बात नहीं है। यह इतना बड़ा घाटा है कि कोई भी समाज अधिक दिनों तक उसे सहन नहीं कर सकता।

परिवार का सही निर्माण पैग़म्बरों के द्वारा होता है

यह भी एक सच्चाई है कि प्रत्येक परिवार मिसाली नहीं होता। बहुत से परिवारों में विभेद पाए जाते हैं। उनके मध्य मधुर संबंध नहीं पाए जाते और वे एक-दूसरे के अधिकारों को नहीं पहचानते। इसका कारण पारिवारिक व्यवस्था की ख़राबी नहीं, बल्कि वैयक्तिक स्वार्थों और हितों का टकराव है। जब कभी मनुष्य का व्यक्तिगत हित परिवार के हितों पर प्रभावी आ जाता है, उसकी गरिमा समाप्त होने लगती है और उसे घाटे से दो-चार होना पड़ता है। इसका इलाज यह है कि आदमी परिवार की आवश्यकता और उसके महत्त्व को महसूस करे और उसे क्षति न पहुँचने दे। ख़ुदा के पैग़म्बरों के उपकारों में से एक उपकार यह भी था कि परिवार में जो बिगाड़ और फ़साद पैदा होता, वे उसका सुधार करते और सही ढंग पर उसके निर्माण का कर्त्तव्य निभाते। उनका प्रयास होता कि परिवार शांति एवं सुकून का निवास-स्थल और एक आदर्श संस्था बन जाए।

पैग़म्बरों ने पारिवारिक जीवन व्यतीत किया

खुदा के पैग़म्बरों (संदेष्टाओं) ने, जो उसके चुने हुए और उसके सबसे प्यारे बंदे होते हैं, पारिवारिक या कुटुंबीय जीवन व्यतीत किया है और उसकी अपेक्षाओं को पूरा किया है। पवित्र क़ुरआन ने इसका स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है —

> "हमने आप (मुहम्मद सल्ल.) से पहले कितने ही पैग़म्बर भेजे और उन्हें बीवियाँ और संतान प्रदान कीं।" (क़ुरआन, 13/38)

पवित्र क़ुरआन ने अनेक पैग़म्बरों की पत्नियों का, उनके बाल-बच्चों और परिवार के अन्य परिजनों का उल्लेख किया है। इससे उन पैग़म्बरों के अपने परिवारवालों से संबंध, उनका प्यार, सहानुभूति, निष्ठा और शुभेच्छा और ख़ानदानवालों का उनके साथ व्यवहार और उनके समर्थन व विरोध करने का विवरण हमारी निगाहों के सामने आ जाता है। इन समस्त पहलुओं से स्वयं अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) और उनकी पत्नियों एवं संतानों का उल्लेख भी क़ुरआन मजीद में मौजूद है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है, वह यह कि ईश्वर के संदेष्टाओं (पैग़म्बरों) ने क्यों पारिवारिक जीवन गुज़ारा और उसकी समस्याओं और उलझनों से अलग रहकर खुदा की इबादत में क्यों नहीं लग गए ? इसका उत्तर यह है कि पारिवारिक जीवन से धर्म एवं नैतिकता को जो उन्नति मिलती है और सहानुभूति, सहयोग और शुभचिंतन की जो पुनीत भावनाएँ पलती-बढ़ती हैं और आत्मनियंत्रण और सुधार एवं प्रशिक्षण के जो अवसर मिलते हैं, वे किसी और साधन से प्राप्त नहीं होते।

परिवार का धर्म में स्थान

इसका अर्थ यह है कि परिवार केवल समाजी संस्था ही नहीं है बल्कि

उसे धार्मिक और नैतिक हैसियत भी प्राप्त है। जो व्यक्ति पारिवारिक जीवन गुज़ारता है वह वास्तव में पैग़म्बरों के तरीक़े पर अमल करता है और अपने जीवन-चरित्र एवं शिष्टाचार को उसके माध्यम से बुलंद करता है।

इस्लाम ने सामाजिक जीवन में परिवार को आधारभूत महत्त्व दिया है। वह जिस प्रकार के परिवार का गठन चाहता है, उसकी रूपरेखा स्पष्ट की है। उसने दाम्पत्य जीवन, उसके उत्तरदायित्वों, उसकी समस्याओं, परिवार के सदस्यों से संबंध, उनके अधिकारों और उनसे संबंधित तमाम बातों के बारे में विस्तृत मार्गदर्शन किया है और अपने अनुयायियों को उनका पाबंद बनाया है।

परिवार—पुरुष और स्त्री के माध्यम से अस्तित्व में आता है

परिवार केवल पुरुषों या केवल स्त्रियों के इकट्ठा होने का नाम नहीं है, बल्कि उसके निर्माण एवं गढन में पुरुष और स्त्री दोनों को अपनी-अपनी भूमिका निभानी होती है। यदि किसी सोसाइटी में कुछ पुरुष या कुछ स्त्रियाँ परस्पर मिल-जुलकर जीवन बिताने लगें और अस्वाभाविक तरीक़े से अपनी कामतृप्ति पूरी करने लगें तो उसे परिवार नहीं कहा जाएगा। इस समय पाश्चात्य जगत् में समलैंगिक संबंध (Homo Sexuality) की जो प्रवृत्ति उन्नति पा रही है, वह पारिवारिक व्यवस्था की दुर्दशा और तबाही की तीव्र प्रतिक्रिया है। इसमें एक पुरुष दूसरे पुरुष के साथ और एक स्त्री दूसरी स्त्री के साथ जीवन-व्यतीत करने लगते हैं। यही उनका घर और परिवार होता है और उसमें एक-दूसरे के अधिकार भी निश्चित कर लिए गए हैं। इसके उपरांत कि इस समलैंगिक शारीरिक संबंध करने से विभिन्न प्रकार के रोग फैल रहे हैं, यह जीवनशैली परिवार के उद्देश्यों की पूर्ति कदापि नहीं करती।

लैंगिक संबंधों का महत्त्व

परिवार का आरंभ पुरुष और स्त्री के लैंगिक संबंध से होता है, इसलिए परिवार के गठन में इसको आधारभूत महत्त्व प्राप्त है। इस संबंध के बारे में दो

दृष्टिकोण पाए जाते हैं। — एक दृष्टिकोण संन्यास[1] का है और दूसरा संसारवादिता[2] का। ये दोनों ही दृष्टिकोण अनैसर्गिक और संतुलित मार्ग से हटे हुए हैं।

संन्यास : लैंगिक संबंध विरोधी

संन्यास काम-भावनाओं को दबाने और कुचलने की शिक्षा देता है और उसे आध्यात्मिक उन्नति का साधन मानता है, लेकिन यह मानव-स्वभाव के विरुद्ध है। इस पर हज़ारों और लाखों लोगों में शायद दो-एक ही मुश्किल से पूर्ण रूप से अमल कर सकते हैं। मनुष्य के अन्दर कामुक भावनाएँ इतनी तीव्र पाई जाती हैं कि वे इस प्रकार के प्रतिबंधों एवं बंदिश को स्वीकार नहीं कर सकता। उसके सामने इस इच्छा की पूर्ति के सही और वैध रास्ते बंद हों तो वह ग़लत रास्तों पर चल पड़ेगा।

संन्यास वास्तव में मानवीय प्रकृति की अपेक्षाओं से दूर भागने की एक शक्ल है जिसे धर्म का नाम दे दिया गया है। इस पर किसी समाज का निर्माण नहीं हो सकता।

संसारवादिता के नुक़सान

दूसरा दृष्टिकोण संसारवादिता का है। यह कामतृप्ति के लिए पूरी स्वच्छंदता चाहता है और किसी मर्यादा व प्रतिबंध का क़ायल नहीं है। यह आचरण व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अत्यंत हानिकारक है। इससे मनुष्य

---

1. संन्यास: - वह जीवनशैली जिसमें लोग सारी उम्र अविवाहित रहते हैं, अच्छे खान-पान का परित्याग कर देते हैं, स्त्रियों से बचते हैं। यहाँ तक कि कामवासना से बचने के लिए लिंग तक कटवा देते हैं। हिन्दुओं का चतुर्थाश्रम।
2. यह अनुवाद 'इबाहियत' का किया गया है। इबादिया उस सम्प्रदाय को अरबी में कहा जाता है जो ईश्वर एवं परलोक दोनों का इनकार करता है। यह सांसरिक सुख एवं उपभोग में आस्था रखता है। जिस तरीक़े से सुख एवं विलास प्राप्त हो वही इसका निहित मार्ग होता है। इसका मानना है कि इनसान बुराई से बचने की क्षमता ही नहीं रखता। -अनुवादक

की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ बुरी तरह प्रभावित होती हैं और वह अनेकों प्रकार के रोगों का शिकार होने और विनाश की ओर बढ़ने लगता है। यह समाज को लैंगिक विक्षिप्तता और आवारागर्दी की ओर ले जाता है। इसमें व्यक्ति लैंगिक सुख तो प्राप्त करता है, किन्तु उसके प्रतिफल में होनेवाली संतान को स्त्री के सिर डाल कर अलग हो जाता है, या दोनों ही उससे दामन बचाकर बच्चे को किसी जनसेवी संस्था अर्थात अनाथालय या राज्य के सुपुर्द कर देते हैं।[1] ये संस्थान बच्चे की भौतिक आवश्यकताओं को तो किसी सीमा तक पूरी कर सकते हैं, किन्तु उस प्यार से ख़ाली होते हैं जो माता-पिता के सीनों में हिल्लोलित होता है और संतान में स्थानांतरित होता है। संतान के उत्तरदायित्व से बचने के लिए पश्चिम जगत् में "संतानहीन परिवार" (Childless Family) की ओर प्रवृत्ति आम होती जा रही है। इसके दो नुक़सान बिल्कुल स्पष्ट हैं। एक यह कि व्यक्ति के अन्दर ज़िम्मेदारियों से बचने और वैयक्तिक सुख एवं स्वाद की प्राप्ति की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और वह किसी भी सामाजिक और नागरिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरा यह कि यदि संतान के बिना जीवन बिताने की प्रवृत्ति आम हो तो जनसंख्या में अनिवार्यतः कमी होगी, समाज मानव शक्ति से वंचित होता चला जाएगा और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसे बाहर के लोगों की सहायता लेनी पड़ेगी।

विवाह – कामतृप्ति का वैध तरीक़ा

इस्लाम संन्यास और संसारवादिता दोनों के ख़िलाफ़ है। काम-भावना उसकी दृष्टि में एक स्वाभाविक भावना है और उसकी पूर्ति ग़लत नहीं है लेकिन इस्लाम इस बात को अनिवार्य ठहराता है कि यह पूर्ति वैध तरीक़े से होनी चाहिए। इसके लिए अवैध (नाजायज़) तरीक़ा अपनाना मना और अवैध (हराम) है। इस

1. ऐसे बच्चों को ये ज़ालिम माँ-बाप किसी जगह लावारिस फेंक आते हैं या फिर उन्हें मौत के घाट उतार देते हैं। इस प्रकार की घटनाएँ आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती रहती हैं।

(अनुवादक)

अवैध तरीक़े से कामतृप्ति को वह व्यभिचार कहता है और उसकी कठोर सज़ा प्रस्तावित करता है। वह समाज को व्यभिचार और उसपर उभारनेवाली चीज़ों से पवित्र रखना चाहता है। वह ईमानवालों (आस्थावानों) की एक विशेषता यह बयान करता है —

> "जो अपने गुप्तांगों की रक्षा करते हैं। — सिवाय इस स्थिति के कि अपनी पत्नियों और उन स्त्रियों से जो उनके अधिकार में हैं अर्थात् लौंडियों से (अपनी कामतृप्ति करते हैं) जो लोग इसके अलावा कोई और तरीक़ा तलाश करें तो ऐसे ही लोग सीमोल्लंघन करनेवाले हैं।"
>
> (क़ुरआन, 23/5-7)

क़ुरआन की उपरोक्त आयतों में कामतृप्ति के दो वैध तरीक़े बयान हुए हैं। वे हैं पत्नियों या लौंडियों के द्वारा कामतृप्ति प्राप्त करना। वर्तमान समय में व्यवहारत: लौंडियों का अस्तित्व नहीं है। यदि कोई व्यक्ति लौंडी (दासी) रखना चाहे तो भी नहीं रख सकता, इसलिए अब दाम्पत्य ही से संबंध बनाना एक वैध सूरत रह गई है।

विवाह स्त्री को दाम्पत्य में लाने का वैध तरीक़ा है। विवाह एक वचन एवं प्रतिज्ञा है जो पुरुष और स्त्री की स्वतंत्र इच्छा से अस्तित्व में आता है। इसमें किसी के साथ बल एवं अत्याचार का लेशमात्र नहीं होता। पुरुष स्वयं से इसका फ़ैसला करता है और स्त्री की अनुमति भी उसके लिए अनिवार्य है। यदि किसी नासमझ या नाबालिग़ लड़की का विवाह हो जाए तो बालिग़ होने के बाद वह अपनी राय और अधिकार का प्रयोग कर सकती है।

विवाह का वैधानिक महत्व

विवाह को कुछ इस्लामी धर्मशास्त्रियों ने वैध कहा है, कुछ के निकट वह अच्छा (मुस्तहब) और प्रिय है, कुछ ने इसे पैग़म्बर की वह नीति जिसका

अपनाना अनिवार्य हो (अर्थात सुन्नते मुअक्कदा) कहा और इसे अपरिहाय (वाजिब) बताया है, किन्तु यदि व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में घिर जाए कि व्यभिचार और दुष्कर्म में लिप्त हो जाने का घोर ख़तरा हो और वह आर्थिक दृष्टि से दाम्पत्य उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकता हो तो विवाह उसके लिए अपरिहार्य (अर्थात् वाजिब) हो जाएगा।'

समाज विवाह में सहायता करे

इस्लाम ने समाज को सचेत किया है और उसे निर्देश दिया है कि वह अविवाहित लोगों के विवाह का प्रबंध करे और इस विषय में उनके साथ सहयोग करे ताकि कोई व्यक्ति केवल संसाधन के अभाव के कारण ऐकिक जीवन (अर्थात् अविवाहित जीवन) गुज़ारने पर विवश न हो जाए। आदेश है —

> ''और विवाह कर दो अपने में से उनका जो अविवाहित हैं, इसी प्रकार अपने ग़ुलामों (दासों) और लौंडियों (दासियों) में से जो नेक और सुचरित्र हैं (और हक़ अदा कर सकते हैं)। यदि वे ग़रीब हैं तो ख़ुदा अपने अनुग्रह से उन्हें समृद्ध कर देगा। ख़ुदा व्यापक एवं सर्वज्ञ है।'' (क़ुरआन, 24/32)

अवैध लैंगिक संबंध का निषेध

इस्लाम इस बात को नाजायज़ ठहराता है कि किसी भी पुरुष और स्त्री के बीच अवैध लैंगिक संबंध स्थापित हो, उनके अंदर जुर्म का एहसास पलता-बढ़ता रहे और वे अपने उत्तरदायित्वों से बचने की कोशिश करें। जो स्त्रियाँ पुरुषों के लिए निषिद्ध हैं, जिनसे उनका विवाह नहीं हो सकता, उनका उल्लेख करने के बाद कहा गया —

> ''इनके अतिरिक्त शेष स्त्रियाँ तुम्हारे लिए वैध कर दी गई हैं। इस प्रकार तुम उन्हें अपने माल (महर) के माध्यम से प्राप्त करो वैवाहिक बंधन में लाने के लिए, न कि दुष्कर्म के लिए।'' (क़ुरआन, 4/24)

विवाह का एलान

इस्लाम यह चाहता है कि विवाह की घोषणा हो और वह सबके सामने हो, ताकि समाज इस बात से बाख़बर हो जाए कि अमुक पुरुष और स्त्री दाम्पत्य संबंध में बंध गए हैं, वे एक-दूसरे के जीवन-साथी बन गए हैं और इसके नैतिक और वैधानिक उत्तरदायित्वों को उठाने का वचन और प्रतिज्ञा कर चुके हैं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर समाज स्वयं भी उन उत्तरदायित्वों को निभाने में उनकी सहायता कर सके और इस विषय में उनसे कोताही हो तो पकड़ कर सके। इसी लिए विवाह के प्रमाण के लिए कम-से-कम दो गवाहों का होना ज़रूरी ठहराया गया है, इसके बिना विवाह नहीं हो सकता।

दाम्पत्य संबंध प्यार का संबंध है

दाम्पत्य संबंध वास्तव में प्रेम एवं मुहब्बत का संबंध है। उसे उसी हैसियत से देखना और बाक़ी रखना चाहिए। पुरुष, स्त्री को अपना ही एक अंग समझे और स्त्री उसके लिए सुकून का कारण साबित हो। पवित्र क़ुरआन कहता है कि इस रिश्ते में सोचने-समझने वाले लोग क़ुदरत की बड़ी निशानियाँ देख सकते हैं –

> "ख़ुदा (ईश्वर) की निशानियों में से एक यह भी है कि उसने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही जाति से जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनके द्वारा सुकून प्राप्त करो और तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता रख दी। निस्संदेह इसमें बहुत-सी निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो चिंतन-मनन करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, 30/21)

पति-पत्नी के अधिकार और उनके उत्तरदायित्व

दाम्पत्य संबंध केवल कामतृप्ति का साधन ही नहीं है, बल्कि इससे परिवार की बुनियाद पड़ती है। इसमें पुरुष और स्त्री दोनों के अधिकार हैं जो उन्हें

प्राप्त होंगे, और दोनों के उत्तरदायित्व भी हैं जिनके वे दोनों पाबंद होंगे। क़ुरआन ने बड़ी स्पष्टता के साथ कहा है —

"और स्त्रियों का हक़ है (पुरुषों पर) जैसा कि (पुरुषों का) उन पर हक़ है।" (क़ुरआन, 2/228)

विवाह-विच्छेद (तलाक़) के आदेश के अंतर्गत हुक्म है —

"न तो माँ को नुक़सान पहुँचाया जाए उसके बच्चे के द्वारा (अर्थात बच्चों को माँ से अलग करके) और न उसे नुक़सान पहुँचाया जाए जिसका वह बच्चा है (अर्थात् बाप को)।" (क़ुरआन, 2/233)

पुरुष का उत्तरदायित्व है कि वह आजिविका के लिए दौड़-धूप करे, पत्नी के भरण-पोषण के ख़र्च को सहन करे, घर और उसकी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करे। स्त्री घर की व्यवस्था संभाले, उसे एक बेहतर और सलीक़े का घर बनाए, अपनी और पति की इज़्ज़त एवं आबरू तथा मान-सम्मान की रक्षा करे, बच्चों की निगरानी और उन्हें उत्तम प्रशिक्षण एवं सभ्यता से आभूषित करे। ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल.) का कथन है —

"पुरुष अपने घरवालों का संरक्षक (निगरानी करनेवाला) है। और उससे उसकी प्रजा (अर्थात परिजनों) के बारे में (क़ियामत के दिन) पूछा जाएगा। और स्त्री अपने पति के घरवालों और उसके बच्चों की संरक्षिका (निगरानी करनेवाली) है और उससे उनके बारे में क़ियामत के दिन) सवाल होगा।" (हदीस : बुख़ारी)

मतभेदों को दूर करने के उपाय

दाम्पत्य जीवन में भी मतभेद एवं विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। आदेश है कि उन मतभेदों एवं विवादों को पति-पत्नी स्वयं ही अपनी सूझबूझ एवं हिकमत से दूर करने का प्रयास करें। पुरुष विशालहृदयता और धैर्य एवं सहनशीलता का

प्रदर्शन करे। पत्नी का आचरण ग़लत और अप्रिय हो तो समझाने-बुझाने से काम ले। परिस्थिति को ठीक करने के लिए वह नाराज़गी का प्रदर्शन भी कर सकता है और शयनस्थल (अर्थात बिस्तर) में उससे अलग रह सकता है, किन्तु एक सीमा से आगे बढ़ने का उसे अधिकार नहीं है। इसी प्रकार स्त्री, पुरुष के अन्दर बेपरवाही महसूस करे तो अपने अधिकारों पर ज़िद करने के स्थान पर अधिकारों को छोड़ना गवारा कर ले, इसके बावजूद संबंध ठीक न हों तो दोनों पक्षों के दो लोगों को पंच मानकर उनके फ़ैसले को स्वीकार कर लिया जाए। इससे भी संबंध अच्छे न हो सकें, तो विवाह-विच्छेद (तलाक़) या ख़ुलअ[1] के द्वारा पृथकता अपनाई जाए ताकि दोनों दाम्पत्य-बंधन से मुक्त होकर अपने भविष्य का फ़ैसला कर सकें।

केवल वैध संतान के अधिकार हैं

मनुष्य के अन्दर संतान की इच्छा स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। वह अपनी संतान से भावनात्मक संबंध रखता है और उससे अत्यंत प्रेम करता है। वह उससे आत्मसुख एवं शांति का आभास करता और उस पर अपना धन-धान्य और पूँजी व्यय करके ख़ुशी का एहसास करता है। वह चाहता है कि उसके द्वारा उसका नाम शेष और उसका वंश जारी रहे। वह उसे अपने धन व दौलत, जायदाद व सम्पत्ति और संसाधनों का वैध उत्तराधिकारी मानता है। इस्लाम इस भावना को ग़लत नहीं समझता, उसने उसे शेष रखा है और संतान की उत्प्रेरणा दी है —

> "(दाम्पत्य संबंध के द्वारा) अल्लाह ने जो संतान तुम्हारे हिस्से में रख दी है, उसकी चाह करो।" (क़ुरआन, 2/187)

विवाह के माध्यम से जो संतान होगी वही वैध संतान होगी और उसी

---

1. ख़ुलअ : उस विवाह-विच्छेद अर्थात तलाक़ को कहते हैं जिसमें स्त्री स्वयं विवाह-विच्छेद (तलाक़) के लिए अनुरोध और माँग करती है। — अनुवादक

को वैधानिक अधिकार प्राप्त होंगे। अवैध लैंगिक संबंध के परिणाम स्वरूप जो बच्चा पैदा होगा, उसका वैधानिक रूप से कोई अधिकार न होगा। स्वयं उस बच्चे पर उसका कोई अधिकार स्वीकार नहीं किया जाएगा। दोनों में से कोई भी दूसरे का उत्तराधिकारी (वारिस) नहीं होगा।

संतान के वैधानिक और नैतिक अधिकार हैं। उन अधिकारों का अदा करना माँ-बाप के लिए अनिवार्य है। उनको आर्थिक या सामाजिक बोझ समझ कर समाप्त नहीं किया जा सकता, उनके भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति की जाएगी। उनको उत्तम शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाएगा। उनसे प्रेम और प्यार का व्यवहार होगा, लेन-देन में उनके बीच भेद-भाव का व्यवहार न अपनाया जाएगा। लड़कों और लड़कियों के साथ समान व्यवहार अपनाया जाएगा।

परिवार ख़ुदा की नेमत है

दाम्पत्य संबंध से पूरा परिवार अस्तित्व में आता है। संतान, माँ, बाप, भाई, बहन और उनके संबंध से अन्य बहुत-से रिश्ते स्थापित होते हैं। परिवार का अस्तित्व ख़ुदा का अनुग्रह एवं एहसान है। सामाजिक जीवन में इसका बड़ा महत्व है। यही बात इन शब्दों में उल्लेख हुई है —

> "ख़ुदा ने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही सहजाति से पत्नियाँ उत्पन्न कीं और तुम्हारी पत्नियों से तुम्हारे लिए पुत्र और पौत्र प्रदान किए और खाने के लिए तुम्हें पाक चीज़ें दीं, तो फिर क्या ये लोग (यह सब कुछ देखते और जानते हुए भी) असत्य को मानते हैं और ख़ुदा की नेमत (अनुग्रह) का इनकार करते हैं।" (क़ुरआन, 16/72)

परिवार एवं कुटुंब के लोगों से व्यक्ति के संबंध दूर व निकट के होते हैं। किसी से उसका ख़ून का रिश्ता सीधे और किसी से माध्यमी होता है। इसी दृष्टि से जीवन में उसके हक़ व अधिकार और उसकी ज़िम्मेदारियाँ नियत होती हैं और

मरने के बाद वे एक-दूसरे के वैधानिक वारिस होते हैं। विरासत के अंतर्गत आदेश है —

"तुम नहीं जानते कि तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटों में से कौन तुम्हारे लिए अधिक लाभ पहुँचाने वाला होगा।" (क़ुरआन, 4/11)

रिश्तेदारों से सद्व्यवहार का आदेश

पवित्र क़ुरआन में बार-बार आदेश दिया गया है कि रिश्तेदारों के अधिकार एवं हक़ अदा किए जाएँ। कहा गया –

"और रिश्तेदारों के हक़ अदा करो।" (क़ुरआन, 17/26)

यही बात सूरा 16 (नहल) की आयत 90 में कही गई है –

अर्थात अल्लाह का आदेश है कि रिश्तेदारों का हक़ अदा करो। ये हक़ व अधिकार परिस्थिति की दृष्टि से वैधानिक और नैतिक दोनों प्रकार के हैं।

रिश्तेदार और परिवारवाले दूर के हों या नज़दीक के, उनके साथ सद्व्यवहार, सहानुभूति और ख़ैरख़ाही का रवय्या अपनाया जाएगा और उनके दुख-दर्द में शामिल हुआ जाएगा। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) ने जिन बातों की शिक्षा दी उनमें यह बात भी सम्मल्लित रही है —

"माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो और रिश्तेदारों से ......।"

(क़ुरआन, 2/83)

रिश्तेदारों के साथ किए जानेवाले इस सद्व्यवहार को इस्लामी परिभाषा में "सिलारहमी" शब्द से अभिव्यक्त किया जाता है।

रिश्तेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करनेवालों की प्रशंसा की गई है। क़ुरआन में है –

"वे जोड़ते हैं उन (रिश्तों) को जिनके जोड़ने का ख़ुदा ने आदेश दिया है और अपने पालनहार प्रभु से डरते हैं।" (क़ुरआन, 13/21)

वास्तव में इस्लाम यह चाहता है कि समाज का हर वह व्यक्ति जिसकी भौतिक दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से अच्छी हालत हो वह परिवार एवं कुटुंब के उन लोगों की सहायता करे जो उसके मुहताज हैं और उन्हें इस योग्य बनाए कि जीवन के कारोबार में वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकें।

परिवार का धार्मिक एवं नैतिक प्रशिक्षण

बीवी-बच्चों और परिवारवालों की भौतिक और आर्थिक आवश्यकताओं की आपूर्ति के साथ उनकी धार्मिक और नैतिक परिस्थिति को सही करने और उसे अच्छा-से-अच्छा बनाने की कोशिश करनी चाहिए। यह मनुष्य के अपने धर्म एवं आस्था और परिवार वालों के साथ शुभ-चिंतन (ख़ैरख़ाही) की अपरिहार्य अपेक्षा है। इससे लापरवाही संसार और परलोक की तबाही का कारण होगी। क़ुरआन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है –

"ऐ ईमानवालो ! बचाओ अपने आप को और आपने घरवालों को उस आग से जिसका ईंधन मनुष्य और पत्थर होंगे।"

(क़ुरआन, 66/6)

संतान का पालन-पोषण इस प्रकार हो कि वह केवल एक पशु या मनेच्छाओं की दास बनकर न रह जाए, बल्कि उसके अन्दर ईश्वर का भय, ईशपरायणता (तक़वा) और परलोक का भय पैदा हो; वे ख़ुदा के वफ़ादार बंदे और ख़ुदा की सृष्टि के प्रति शुभचिंतक (ख़ैरख़ाह) बनकर उभरें। संसार में भलाई को आम करें, बुराई और फ़साद को फैलने न दें और उनके अंदर इस राह के कष्ट सहन करने का दृढ़-संकल्प और साहस हो। हज़रत लुक़मान अपने बेटे से कहते हैं –

"ऐ मेरे बेटे! नमाज़ का आयोजन करो, अच्छाइयों का आदेश दो और बुराइयों से रोको और जो तकलीफ़ तुम्हें पहुँचे उस पर सब्र करो। निस्संदेह यह उन कामों में से हैं जो साहस के हैं।"

(क़ुरआन, 31/17)

हज़रत लुक़मान ने अपने बेटे को जिन बातों की शिक्षा दी थी, ये उनमें से कुछ हैं। उन्होंने और भी नसीहतें कीं। बाप और बेटे के संबंधों की स्थिति अन्य संबंधों से भिन्न होती है। बाप की नसीहत को बेटा आदेश समझकर स्वीकार कर सकता है और उस का पाबंद हो सकता है। इसकी आशा हर किसी से नहीं की जा सकती। हाँ, इससे यह बात अवश्य निकलती है कि परिवार के जो लोग मनुष्य के प्रभावाधीन हैं और जो उसकी बात सुन सकते हैं, उन सभी को भलाई और सुधार के मार्ग पर लगाना उसकी धार्मिक और नैतिक ज़िम्मेदारी है।

यहाँ इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था का बहुत ही संक्षेप में परिचय प्रस्तुत किया गया है। इससे समझा जा सकता है कि इस्लाम परिवार को समाज के एक नेक और मज़बूत संस्था के रूप में अस्तित्व में लाता है और उसको उन्नति देता है। वह न उसकी भौतिक आवश्यकताओं को अनदेखा करता है और न उसकी नैतिक अपेक्षाओं को। वह दोनों को पूरा महत्त्व देता है। उसमें किसी भी पहलू से कोताही हो तो उसके सुधार का उचित उपाय करता है। परिवार की संरचना यदि सही तौर-तरीक़े पर हो और वह सुआचरण को अपनाने लगे तो पूरे समाज ही की दिशा सही हो जाएगी और उसका सफ़र बिल्कुल सही दिशा में होने लगेगा। इसलिए कि परिवारों के समूह ही से समाज अस्तित्व में आता है। परिवार से उसे जो ऊर्जा और शक्ति प्राप्त होती है वह किसी और माध्यम से नहीं मिल सकती।

— सामार तहक़ीक़ाते इस्लामी उर्दू, अलीगढ़, अंक अप्रैल-जून 2004